नाटक : परिभाषा और स्वरूप

'नाटक' वह कृति है, जिसके आधार पर अभिनेताओं द्वारा मंच पर अभिनय प्रस्तुत किया जाता है।

संस्कृत व्याकरण के अनुसार—नाटक का 'तत्व' वही हो सकता है, जो आदि से अन्त तक नाट्क में व्याप्त रहे और जिसके तिरोहित होने पर नाटक का अस्तित्व ही समाप्त हो जाए।

भारतीय नाट्य शास्त्र के अनुसार
नाटक के तत्व

- डॉ0 भगीरथ मिश्र के अनुसार

1– कथावस्तु

2– नायक और पात्र

3– रस

4– अभिनय

बाबू गुलाब राय के अनुसार

1– वस्तु

2– पात्र

3– रस

4– उद्देश्य

दसरूपककार धनंजय के अनुसार–

- ‘ वस्तु, नेता, रसस्तेषा भेदकाः’ अर्थात वस्तु ,नेता और रस के आधार पर रूपक अथवा उपरूपक के भेद किए जाते हैं। अतः ये नाटक के तत्व नहीं हैं।
- नाटक के मूल तत्व जो स्वयं में पूर्ण और सर्वत्र व्याप्त हैं–

1– कथा–तत्व

2– संवाद–तत्व

3– रंग–निर्देश

इन तीनों में से किसी एक के अभाव में नाटक का अस्तित्व खतरे में पड़ सकता है।

क्या रस नाटक का तत्व है?

- रस का प्रभाव स्थल मंच, अभिनेता, संवाद और रंग निर्देश के बाहर होता है।
- सामाजिक में उत्पन्न रसोद्रेक नाटक का परिणाम हो सकता है तत्व नहीं।
- रस नाटक का लक्ष्य है।

कथा–तत्व

'एक था राजा और एक थी रानी'

1,दसरूपककार के अनुसार–

रस और नेता के अनुकूल कथा के बिना रूपक की कल्पना नहीं की जा सकती।

2,कोई भी कथा नाटक का तत्व बनते बनते काफी कुछ बदल जाती है।

3–नाटक की रचना से पूर्व नाटककार कथा में आवश्यक परिवर्तन, परिवर्द्धन और संशोधन करता है। जिसे अंग्रेजी में 'प्लाट' कहा जाता है।

4– चरित्र, घटनाओं और व्यापार योजनाओं का सन्निवेश होने पर कथा कथावस्तु बनती है।

कथावस्तु का क्षेत्र

भूत, भविष्य और वर्तमान के समस्त क्रिया–कलाप कथावस्तु के क्षेत्र हैं।

कथावस्तु के प्रकार

भारतीय मत के अनुसार– कथावस्तु के तीन प्रकार हैं–

1– प्रख्यात

2– उत्पाद्य

3– मिश्र

प्रख्यात कथानक को सर्वश्रेष्ठ माना गया है।

- प्रख्यात– 'चन्द्रगुप्त', 'अजातशत्रु'
- उत्पाद्य– 'भारत दुर्दशा', 'सिंदूर की होली'
- मिश्र– 'ध्रुवस्वामिनी'

आधिकारिक व प्रासंगिक

- आधिकारिक कथा– मूल कथा हाकती है। फल प्राप्ति की योग्यता को अधिकार कहा गया हैं
- प्रासंगिक– उपकथा को प्रासंगिक कथा कहा जाता है। ये दो प्रकार की होती हैं–

1– पताका

2– प्रकरी

कथावस्तु और अर्थप्रकृतियां

कथावस्तु को फल–प्राप्ति की ओर अग्रसर करने वाले चमत्कारपूर्ण अंश अर्थ प्रकृति कहे जाते हैं।

- बीज–
- बिन्दू
- पताका
- प्रकरी
- कार्य

आचार्य नन्ददुलारे बाजपेई अर्थ प्रकृतियों को कथानक के भेद एवं अंग–विन्यास के सूचक मानते हैं।ये नाटक के बाह्य सौन्दर्य के विधायक हैं।

कथावस्तु की अवस्थाएं

नायक द्वारा किए गए प्रयत्न अर्थात कार्य की पांच अवस्थाएं होती हैं।

- आरम्भ
- प्रयत्न
- प्राप्त्याशा
- नियताप्ति (निश्चितता)
- फलागम

कथावस्तु और सन्धियां

अर्थप्रकृति के कार्यावस्था से मेल को ही सन्धि कहतेहैं। क्रमशः पांच अर्थप्रकृतियों के पांच कार्यावस्थाओं के साथ मेल से ही पांच सन्धियों का उदय होता है।

- मुख सन्धि– प्रारम्भ अवस्था और बीज अर्थ प्रकृति का योग
- प्रतिमुख सन्धि– प्रयत्न अवस्था और बिन्दु अर्थ प्रकृति का योग
- गर्भ सन्धि– प्राप्त्यासा अवस्था और पताका अर्थ प्रकृति का योग
- विमर्श सन्धि– नियताप्ति अवस्था और प्रकरी अर्थ प्रकृति का योग
- निर्वहण सन्धि– कार्य/प्रयोजन अवस्था और फलागम अर्थ प्रकृति का योग

पाश्चात्य नाट्य चिन्तक नाटक के गठन में तीन अन्वितियों का होना आवश्यक मानते हैं।

- कार्य की अन्विति unity of action
- स्थान की अन्विति unity of place
- समय की अन्विति unity of time

कालान्तर में स्थान और काल की अन्वितियों में छूट ली गयी और प्रभाव की अन्विति (unity of effect) पर बल दिया गया।

नायक तथा अन्य पात्र

- धीरोदात्त
- धीरललित
- धीरप्रशान्त
- धीरोद्धत

इनके अतिरिक्त सहनायक अथवा प्रतिनायक, नायिका, प्रतिनायिका एवं खल पात्र होते हैं।

अभिनय के प्रकार

- आहार्य
- आंगिक
- वाचिक
- सात्विक

सभी प्रकार के अभिनय संयुक्त रूप से नाटक की रंगमंचीय प्रस्तुति में सहायक होते हैं। यद्यपि नाटक का मूल प्रारूप अब भी वही है, किन्तु उसमें परिवर्तित परिवेश के अनुरूप कुछ परिवर्तन आ गए हैं।